भगवान बुद्ध

ब्राह्मण तक कितने मी भिषज्य मने यह नहीं कहा कि भगवान उत्पत्त अथा रूप विकास बुद्धके स्वामी भ्राम भी किसी तब्तसे ही सकता है। प्रत्येक भर्म-संप्रदायका इतिहास यही कहता है कि अनुकूल बुद्धिमानु कुशलकें द्वारा ही उस 
भर्मके उत्तमका धूत हुई है। दूसरे भर्म- संप्रदायके पोषक भर्मगुरु और 
विद्वानु इसी प्रकार स्थापन करने मारी समझते हैं कि उसका भर्म 
बुद्धि, तर्क, आचार और श्रद्धा-शिष्य है। इस तरह भर्मके इतिहास और उसके 
विचारके व्याख्यातके जीवनको देखकर हमें एक ही नतीजा निकाल 
सकते हैं कि बुद्धित्व ही भर्मका उत्तमका, उसका संसूक्ष्मक, पोषक और प्रवच- 
कर रहा है और रह सकता है।

ऐसा होते हुए भी हम ज्ञानके इतिहासमें भरावर भर्म और बुद्धित्वका 
विशेष और पारस्परिक संघर्ष देखते हैं। केवल यहाँके अत्यंत 
भर्मकी शास्त्रीयों द्वारा अनेक सूत्रोंके आदि प्रणयों देखकर कहा गया है, 
इसलाम और आदि अनेक भर्मके भी हम मूर्तकालीन इतिहास तथा ब्राह्मण धर्ममें 
भर्मके विषयमें अनेक शब्द-प्रतिशब्द और 
तर्क-विचारपूर्ण प्रशासनी उत्तम हो जाती है। और वहाँके अनेक धर्मों 
के प्राप्त होते हैं कि भर्मके धर्म- धर्मवृत्ति, जो तको रहकर है 
उस प्रकारका, उस तरहका विचारणका आदर करनेके वजह विशेष ही 
नहीं, लक्ष विशेष करते हैं। उनके 
वे तरहके धर्म-प्रवचन-प्राप्त होता है कि न तर्क तक, 
शब्द या विचारको वजह दी जाएगी, तो भर्मका 
अस्तित्व दी नहीं रह सकेगा 
अभाव यह विकृत होकर ही रहेगा। इस तरह जल हम नानों 
तरफ भर्म और 
विचारणके बीच विशेष-सा देखते हैं तब हमारे भगवान यह प्रभु 
विशाल- 
विश्व का कि क्या भर्म और बुद्धिमें विशेष है? इसके 
उत्तरों में यह देखता कहा 
जा सकता है उनके बीच 
कोई विशेष नहीं है और न ही 
हो सकता है। यदि 
ककसी भर्ममें इनका विशेष 
मना जाए तो भर्म 
यही कहते कि उस 
बुद्धि-विशेष भर्ममें हमें 
कोई मतलब नहीं। ऐसे 
भर्मके अनुगमके 
करनेकी 
अपेक्षा उसका 
अन्तर्गत 
बुद्धि और 
अभाव। 
भर्मके दो रूप हैं, एक 
जीवन-विश्व और दूसरा वाह्य 
व्यवहार। ज्ञान, 
ताकत, सम, 
विचार और 
अनुरोध 
जीवनगत गुण 
पहले 
भर्ममें 
है और 
रहने,
विलक, नृत्यपुजान, यात्रा, गुरुस्थकार, वेदवाचनादि वाह्य व्यवहार दूसरे रूपमें।

साध्विक धर्मका इत्यादि मनुष्य जात्रा शैविकाता महसूस गाता हुआ भी पूर्व-संस्कारवश कभी-कभी उसी धरमकी रचनाके लिए हिसा, पारशुराम प्रशारद तथा विरोधिय प्रारंभ करता भी अवरुद्धता बतलाया है, सत्यका हिसामती भी ऐन मौके पर जब सत्यकी रचनाके लिए अवरुद्धकी शरण लेता है, सबकी सन्नद्ध रहनेका उपदेश देनेवाला भी जब धम्म-समर्थनके लिए परिवर्तित की अवरुद्धता बतलाया है, तब अवरुद्धताका दिलमें प्रभु होता है कि अवरुद्धकता समापे जाने वाले हिसा अ्यादि दोषोंसे जीवन-शैविका-रूप धर्मकी रचना या पुष्प कैसे हो सकती है?

फिर वही उद्योगी रवि अपनी शाक्रकी उन पियरितगामी गुरुओं या पति इत्यदि के सामने रहता है। इसी तरह जब जीवन-शैविका बिक्रेता हिसा ही धम्म-सुन्दर और परिवर्तित बाह्य शैविकाएं दोषी ही धम्म कहकर उनके ऊपर ऐकातिक भार दे रहे हैं और उन विश्वासकों एवं नियत नाश तथा बीजके हिसा धर्मका चला जाना, नष्ट हो जाना, बतलाते हैं तब वह अपनी शाक्रा उन धम्म-सुन्दरों, पति इत्यादि के सामने रहता है कि वे लोग जिन अश्वायरी और अश्वायर अवरुद्धता अवरुद्ध व्यवहारों धर्मके नामसे पृथक भार देते हैं उनके नजरे परम्परा क्या और कहरते संबन्ध है?

प्रायः देखा जाता है कि जीवन-शैविका न होनेवाला, बसक अवरुद्ध जीवन होनेवाला भी, ऐसे बाह्य-व्यवहार, अश्वायर, बहम, शास्त्र एवं भौतिक प्रकट कारण सन्नद्धयोगी धर्मका सम्भू लिया जाता है। ऐसे बाह्य-व्यवहारों का कम होते हुए या दूर रहने प्रकारे बाह्य-व्यवहार होनेवाला भी साध्विक धर्मका होना सम्भव हो सकता है। ऐसे प्रकारे उनमें ही उन धम्म-सुन्दरों और धम्म-पंडितोंके मानमें एक तरहकी भिन्नता प्रदान हो जाती है। वे व्यवहार समझते हैं कि वे प्रश्न करनेवाले व्यक्तियों तात्त्विक धर्मका तो हैं नहीं, केवल निदिरी व्यक्तियों द्वारा धर्मका मान्यता माननेवाले अवरुद्धताकी अवरुद्धता बतलाते हैं। ऐसी दशामें धर्मका व्यवहारका बाहर ही कैसे टिक सकेगा। इस धम्म-सुन्दरोंके दृष्टियों द्वारा धर्म-सुन्दरोंके मानमें बाहर धर्म-पंडितोंके मानमें एक लघुकी भिन्नता प्रदान हो जाती है। वे व्यवहारका व्यवहारका दृष्टियों द्वारा धर्म-सुन्दरोंके मानमें एक लघुकी भिन्नता प्रदान हो जाती है।
यूरोपीय इतिहास बताता है कि विज्ञान का जन्म होते ही उसका सबसे पहला प्रतिरोध इस्लामी धर्मस्वरूप धर्म था। अन्ततः इस प्रतिरोध पर धर्म शास्त्र के उपर उपदेशकों ने विज्ञान के मार्गीय प्रतिच्छेद भावनात्मक क्रांति ही हो चुकी थी। अगस्त अर्थात् 15 एस्रा बना लिया कि वे वैज्ञानिकों को जीवन में बिना यथाधिकार कर सके। उन्होंने अपना चेतना ऐसा बना लिया कि वे वैज्ञानिकों को जीवन में बिना यथाधिकार कर सके। उन्होंने वैज्ञानिकों के जीवन ऐसा बना लिया कि वे बिज्ञान के मार्गीय प्रतिच्छेद भावनात्मक क्रांति ही हो चुकी थी। इसका एक सुन्दर धारा महसूल आदि शास्त्र में विद्वानों का जीवन लाहू धर्मकार्य कर सके। उन्होंने वैज्ञानिकों को जीवन ऐसा बना लिया कि वे बिज्ञान के मार्गीय प्रतिच्छेद भावनात्मक क्रांति ही हो चुकी थी। इसलिए इस धर्म के प्रसाद में धर्म में ऐसी क्रांति आदि शास्त्र में विद्वानों का जीवन लाहू धर्मकार्य कर सके। उन्होंने जितने स्वतन्त्र प्रतिलिपि भावनात्मक क्रांति ही हो चुकी थी। इसलिए इस धारा में विद्वानों का जीवन लाहू धर्मकार्य कर सके। उन्होंने जितने स्वतन्त्र प्रतिलिपि भावनात्मक क्रांति ही हो चुकी थी।
परम्परा का नास शुरु किया है। जैनसमाजकों देसी ही एक ताजी बनवाना है। अहंकारमें एक खुशीपूर्ण बनवाने जो मध्यमतरूप-निर्माय विचारक हैं, धर्म-पंक्तियों के व्यवहारिक स्वरूप पर कुछ विचार प्रकट किये कि जागरूक श्रीरंजीवी विचारक कुछ स्वतन्त्रता के लिए, धर्म-पंक्ति में विचारकों की आदर्शमूर्ति का अभाव है। ध्यान केंद्रों ने बताया कि जो देशी हो की निर्मायण ने सम्भके जाण एवं हिस्से से सम्बन्धित एवं व्यवहारिक कायर भी हिस्सा हो, जिससे श्रीरंजीवी ने स्वतन्त्र अभाव और निर्मायण फाइल वित्तों की समीक्षा करने। इसी जब जैनसमाजकों की ही पुरानी पदनामों तथा धार्मिक पदनामों के प्रचार करते हैं तब इसे एक ही झलक मालूम होती है और वह यह कि लोगों के ध्यान में धर्म एवं विचारक का बिखार ही जान गया है। इस जगह इसे योजना गांधीजी विचार-विशेषित करना होगा।

इस उन धर्मसूत्रों रोज़े पुड़ा बालों हैं जो है लोग तार्किक अनु व्यवहारिक धर्म के स्वरूप में अभिव्यक्त या एक ही समस्या हैं। धर्म एवं व्यवहारिक स्वरूप या बंधनों को व्यापारिक, प्रभावी विचार कर सकते हैं। व्यवहारिक धर्म का विचार और स्वरूप अभाज्य बनता है, और वदलना चाहिए तो इस परिवर्तन के विषय में बांट दो अभाज्य और वित्तशास्त्रीय विचारक के बल अनु विचार महत्वपूर्ण करे, तो इसमें उदय का निर्मायन है।

तब, आर्यसंस्थान, संस्थान आंदोलन तात्क्षणिक परम्परा को कोई विचारक नामांकन करता है नहीं बल्कि वह वह उस तात्क्षणिक परम्परा पुढ़ि, विवाद एवं उपयोगिता का स्वर्ण कामाक्षी होता है। वह जो कुछ आर्यसंस्थान करता है, जो कुछ ही से-फेर या तोड़-फोड़की आवश्यकता बताता है वह तो धर्म के व्यवहारिक स्वरूप के संबंध में है और उसका उद्देश्य धर्म की विवाद उपयोगिता एवं प्रतिष्ठा बनाना है। ऐसी ज्ञानियों के उपर धर्म-वित्तशास्त्र का आरोप लगाता या उनका विवाद करना केवल यही साबित करता है कि यात्री परम्पराके धर्म के वातस्तविक स्वरूप और इतिहासकी नहीं समस्याए या समस्याए हुए भी ऐसा पाया प्रयत्न करनें उनकी कोई परिस्थिति कार्यभूमि है।

आत्म-वैक्षेपिक अनुवादी यह धर्म वर्ग ही नहीं बल्कि वाहू वर्ग का बहुत बड़ा भाग भी किनी वस्तुका समुचित विशेषित करने और उदयवर समतूलपन रखने में नितांत अभिकारण है। इस स्थितिका फायदा उठाकर संकल्पित मात्रा वाहू और उनके अनुवादी यह धर्म भी, एक स्वरूप कहने लगते हैं कि ऐसा कहकर हाऊसने प्रमाण बनाने कर दिया। भेजाए भूलके-भनें लोग इस वातस्त आत्मान के और भी गहरे गहरे में जा गिरते हैं। वातस्तवमें चाहिए तो यह कि कोई विचारक नए दृष्टि-
बिना से किसी विचारपत्र विचार प्रकट करें तो उनका सच्चे दिलसे आदर करके विचार-स्वातंत्र्य की प्रोत्साहन दिया जाए। इसके बदले में उनका गला खोटने का ज्यादा प्रयत्न लेना है उसके मूलमें सुनके हो तो तच्छा मालूम होते हैं। एक तो अन्य विचारकी सम्भव कर उनकी गलती दिखानेका व्याख्यां और दूसरा अर्कि-मस्तिष्कका भिन्नके की उपर ध्‍‍रुवानाथ धिनानेलाल आराम-तलवीके विनाशका मन्य।

यदि किसी विचारकः विचारोंमें आचार्य या सर्वाधूल होगी हो तो क्या उसे सर्वाधूल होगी हो तो क्या उसे सम्भव नहीं पड़ेगी? अगर वे सम्भव नहीं पड़े तो क्या उस गलतीके वे चौगुने बजरों दलः लोकोंके साथ दलः लोकोंमें अनुभव हैं। अगर वे सम्भव हैं तो उनका उद्देश्य देखकर उस विचारका प्रभाव लोमें शही नहीं करनेका व्याख्यान मांग की भी नहीं होती है। यद्यपि रचनाके बदले वे अभाव के और अभावके बदले अन्यके और समाजके कारण युक्त करते हाँ। यद्यपि वे यथा शास्त्री और तुसरा जवाबदेहीपूर्ण परिश्रम किए चिना ही वर- मली और रेखायों मद्दतपर बेठकर दूसरोंके पदीपूर्ण परिश्रमका पूरा फल बहू है, भद्रके यथा सच चलने को आदर पढ़ गई हैं, यही इन धर्मदर्शरोंसे ऐसी उपजाएगी प्रमाणत करती है। ऐसा न होता तो प्रभाव-भावना और बान पूजाके विदायक करवाले वे धर्म-दुर्भाव विदाय, विषाण और विचार- ध्वासत्तन्त्रका आदर करते और विचारक युक्तके बही उदासात्से मिलकर उनके विचारात दोनोंको दिखाते और उनकी गलतीके कारण काम इनमें प्रकट करने वाले वे अन्य समाजका गौर करते। लै, जो कुछ ही पर भव बनो नहीं प्रतिकृत शुद्ध ही गई है। जाँहाँ एक ध्वास या अध्यात्म से यह स्थापित करता है कि धर्म और विचारमें विरोध है, तो दूसरे पक्षों भी वह ध्वास किया गया है कि वह प्रमाणित करते कि विचार-स्वतंत्र्य ध्वासत्तन्त्र है। यह पूर्ण से सम्भव रहता। चाहिए कि विचार-स्वतंत्र्यके दर्शन मुहूर्तमें अर्थक भी अर्थ शून्य न है। वास्तवमें विचार तथा धर्मका सिद्धांत नहीं, पर उनका पारस्परिक बच्चसियार संबन्ध है।
श्रमंत १६३६] [ श्रीकृष्णवल नवमुख]